राजभाषा कमीशन

रजि० नं० बी ४४४८
लाअिसेन्स नं० १५

हरिजनसेवक

दो आना

(संस्थापक : महात्मा गांधी)

भाग १९ सम्पादक : मगनभाई प्रभुदास देसाई अंक ३९

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

अहमदाबाद, शनिवार, ता० २६ नवम्बर, १९५५

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६
विदेशमें रु० ८; शि० १४

भारतका समाजशास्त्र

[ता० २८–९–'५५ को कुजेन्द्री (अुत्कल) में दिया गया प्रार्थना-प्रवचन।]

कार्यकर्ताओंके बारेमें कुछ चिंतन करके दो विचार अुपस्थित किये गये हैं। कहा गया है कि जिन परिवारोंमें दो-चार भाअी होते हैं, अुनमें से अेकाध भाअीको सार्वजनिक सेवाके लिअे छोड़ें, अुसकी आजीविका और परिवार आदिका जिम्मा वे अुठायें और निष्काम भावसे अेक भाअी सेवा करता रहे। दूसरी बात यह सुझायी गयी कि कुछ वानप्रस्थ वृत्तिके लोग हों। जैसे आज यहां पर चंद लोग हैं, वैसे जगह-जगह निर्माण हों और अुनका आकर्षण जनसेवाकी तरफ हो। वैसे ये दोनों सूचनायें अिन चार-पांच सालके मेरे प्रवासके दरमियान ही मेरे सामने नहीं आयीं, बल्कि अुसके पहले भी वर्षोंसे मैं यह कहते आया हूं।

संयुक्त परिवारका लाभ

दिन-ब-दिन जिसे हम सामूहिक या संयुक्त परिवार कहते हैं वे टूट रहे हैं, जो हमारी समाज-रचना पर अेक आपत्ति है। अुसके कारणोंमें मैं नहीं जाना चाहता। लेकिन मुख्य कारण है — समाजकी अर्थमूलक रचना। अिसके कारण परिवारके लोग पैसेकी शोधमें अनेक धंधोंमें लग जाते हैं और अनेक स्थानोंमें बंट जाते हैं। जो अेक स्थानमें रहते हैं, अुनका भी आपस-आपसमें मेल नहीं रहता। अिसलिअे घरके टुकड़े हो जाते हैं। आज जमीनके 'सीलिंग' की जो बात चलती है, अुसके कारण कुटुम्ब संस्थाके भंगके वास्ते और भी अधिक चालना मिलती है। अिस बारेमें मैंने बिहारमें कअी जगह लोगोंको आगाह किया कि भाअियो, अिससे बचो। अिसमें कोअी संदेह नहीं है कि अगर सामूहिक परिवार बने रहेंगे, तो हरअेक परिवारकी तरफसे अेक सार्वजनिक कार्यकर्ताका दान हो सकता है। हमें अेक दफा यात्रामें राष्ट्रपतिजीसे मिलनेका मौका मिला। अुनके साथ अिस विषयमें चर्चा हुअी। मैंने अुनके सामने संयुक्त परिवारकी अुपयोगिता अुपस्थित की, तो वे कहने लगे कि यह तो मेरे ही अनुभवसे सिद्ध होता है। अगर हमारा सामूहिक परिवार नहीं होता और हमारे दूसरे भाअी हमारी चिंता नहीं करते तो शायद मैं सार्वजनिक सेवाके लिअे अुपलब्ध नहीं होता। अुन्होंने अपना यह जो अनुभव बताया वह बहुत ही ध्यानमें लेने लायक है।

नये युगकी सौगात

वानप्रस्थ आश्रमकी बात हमारे लिअे और हमारी संस्कृतिके लिअे नयी नहीं है। लेकिन आज हमारे पास अपनी संस्कृतिका केवल अभिमानमात्र रहा है, अुसका कोअी स्वरूप मौजूद नहीं है। हमारी समाज-रचनाके जो मूलभूत तत्त्व थे, वे सारे दिन-ब-दिन टूट रहे हैं। अिस भूमिमें समाजशास्त्रका गहरा चिंतन वर्षोंसे बंद है। दूसरे कुछ विषयोंका चिंतन जरूर चला है। अर्थशास्त्रीय कुछ चिंतन हुआ है। और राजनीतिशास्त्रका भी कुछ चिंतन हुआ है, किन्तु अपनी स्थितिको ध्यानमें रखकर समाजशास्त्रका मूलभूत चिंतन अिन दिनों हुआ ही नहीं। जिसे हम समाजशास्त्रका चिंतन कहते हैं अुसका अिन दो सौ सालमें बहुत ही कम चिंतन हुआ है। बल्कि जो कुछ थोड़ीसी कोशिश हुअी है, वह यहांके समाजको तोड़नेकी ही हुअी है। जानबूझकर समाज तोड़नेकी कोशिश हुअी है, अैसी बात नहीं। परन्तु पश्चिमका समाजशास्त्र श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके यहां लागू करनेकी चेष्टा की गअी। हमारी आश्रम-व्यवस्था कितनी व्यापक, कितनी सूक्ष्म और कितनी गहरी थी अिसका दर्शन हमें नहीं हुआ।

आश्रम-व्यवस्थाका मूल

हमारी आश्रम-व्यवस्थामें अुत्तम मानसशास्त्र, अुत्तम शिक्षण-शास्त्र और अुत्तम विचारशास्त्र तीनों अिकट्ठे हुअे हैं। मानस और विचार, दोनोंके बारेमें सोचते हुअे मानव-जीवनके दो बड़े हिस्से होते हैं। अेक होता है प्रवृत्ति-विभाग और दूसरा होता है निवृत्ति-विभाग। दोनों विरोधी नहीं हैं, दोनों परस्पर पूरक हैं। किसीके जीवनमें किसी चीजकी प्रधानता या अधिकता हो सकती है। परन्तु दोनोंकी आवश्यकता हरअेकके जीवनमें होती है और दोनों मिलकर पूर्णता होती है। प्रवृत्तिका अर्थ था — कर्मयोग-मूलक अभ्युदयका प्रयत्न। समाज अुन्नत हो, अुसका जीवन-मान या जीवनका स्तर समान रूपसे अूंचा अुठे अिसकी कोशिश। सूत्रमें कहना हो तो अुसे कहेंगे कर्मयोग-मूलक जनसेवा। साधारणतया हरअेकके जीवनका पूर्वार्ध अिस प्रकारका होना चाहिये और जीवनका अुत्तरार्ध निवृत्तिके लिअे होना चाहिये। निवृत्ति चिंतन-प्रधान होती है और अुसका हेतु है लोक-शिक्षण। अगर हम यह कहें कि अभ्युदयका अर्थ है लोगोंका जीवनस्तर अूंचा अुठाना, तो निवृत्तिका अर्थ होता है लोगोंका चिंतनस्तर अूंचा अुठाना। समाजकी स्थूल अुन्नतिके सारे कार्य कर्मयोगके जरिये होते हैं और समाजकी सूक्ष्म अुन्नतिके सारे कार्य चिंतनसे होते हैं।

भगवान् बुद्ध और कृषिकार्य

कर्मयोगमें कृषि प्रधान होती है, अिसलिअे मैंने आग्रह रखा है कि हरअेकको खेतीमें हिस्सा लेना चाहिये। अिसके लिअे मैं अपने पूर्वजोंके वचनोंका आधार दे सकता हूं। लेकिन वह दिये बिना ही यह कह रहा हूं कि खेतीके बिना व्यक्तित्व कभी पूर्ण नहीं होगा। जब बुद्ध भगवान्से पूछा गया कि आप खेती क्यों नहीं करते हैं, तो अुन्होंने यह जवाब नहीं दिया कि भाअी, खेती तो तुम्हारे लिअे है, मेरे लिअे नहीं। अुन्होंने कहा कि मेरे लिअे लोक-मानसकी विशाल भूमि है और प्रबोध-शक्ति ही मेरा हल है, प्रेमरूपी पानीका प्रवाह मैं अुसमें छोड़ता हूं, अित्यादि अित्यादि।

www.vinoba.in

जैसे कोअी किसान बताता है, अुस तरह अुन्होंने सांगोपांग और सुन्दर वर्णन बताया। और जब शिष्यकी तरफसे अुन्हें पूछा गया कि आप हमारे लिअे क्या प्रत्यक्ष कार्यक्रम देंगे, तो अुन्होंने कहा, मैं अैसा कार्यक्रम पेश कर रहा हूं जिसमें तुम्हारा आरोग्य भी सधेगा और तुम्हारी अुन्नति भी सधेगी। वे बोले, अखंड घूमा करो और तालाब खोदा करो। मैंने यह चीज आपके सामने अिसलिअे रखी कि मनुष्य-जीवनमें कृषि अनिवार्य है, अुसके बिना व्यक्तिकी पूर्णता नहीं होती है, अिसका निदर्शन आपको मिले। कृषिके साथ-साथ दूसरे विविध व्यवसाय भी हो सकते हैं, वे कृषिके साथ ही शोभा देते हैं। अिस तरह कर्मयोगकी अवस्थामें हरअेकके जीवनमें कृषिका अंग होना चाहिये।

अनुभवी लोगोंका शिक्षण-कार्य

हरअेकको अपने अुत्तर जीवनमें अध्यापक होना चाहिये और शिक्षणका काम करना चाहिये। मैंने कहा था कि हम विद्यार्थियोंको शिक्षा देना चाहते हैं। तो अैसे ही शिक्षकोंके जरिये शिक्षण देना योग्य होगा, जो कि कुछ अनुभवी हों। आज तो नये-नये, बिना अनुभवके जवानोंको अध्यापक बनाया जाता है। जिन्होंने जीवनमें कुछ पुरुषार्थ नहीं किया है वे तालीमका काम करते हैं। कोअी वाणिज्य-विद्या सिखाते हैं, परन्तु अुन्होंने व्यापार नहीं किया है। जो लश्करकी विद्या सिखाते हैं, अुन्होंने लश्करमें कोअी पराक्रम नहीं किया है। और राजनीति पर तो हर कॉलेजमें व्याख्यान होते हैं, अैसे लोगों द्वारा जिन्होंने पॉलिटिक्समें कोअी हिस्सा नहीं लिया। तत्त्वज्ञानकी व्याख्या तो हर कॉलेजमें होती है, यद्यपि अर्थकी माया किसीकी छूटी नहीं है। व्याख्याताकी भी नहीं। अिसलिअे हमारी योजनामें घनश्यामदास बिड़लाके लिअे यह लाजमी है कि अेक अुम्रमें अपना व्यापार छोड़कर वे हमारे विद्यालयमें अध्यापक बनें। पंडित नेहरूके लिअे यह लाजमी है कि वे अेक अवस्थामें प्रधानमंत्री-पद छोड़कर हमारे विद्यालयमें पॉलिटिक्स (राजनीति)के अध्यापक बनें। मेरे कहनेका मतलब यह है कि अूंचेसे अूंचे अनुभवी लोगोंको अपनी अेक अुम्रमें शिक्षण-कार्यमें हिस्सा लेना चाहिये।

अिस तरह प्रवृत्ति-विभाग और निवृत्ति-विभाग मिलकर जीवन पूर्ण होता है, अैसी कल्पना की गअी। ये दोनों विभाग अितने प्राकृतिक हैं कि आज भी हरअेकके जीवनमें वे होते हैं, लेकिन विकृत रूपमें होते हैं। आज हमारी प्रवृत्ति लोक-सेवा-परायण कर्मयोगकी न रहकर विषय-सेवा-परायण है। आज हमारी निवृत्ति चिंतन-परायण या शिक्षण-परायण न होकर आराम या निष्क्रियता-परायण हो गयी है। हम अितना ही समझते हैं कि अेक हद तक विषय-सेवामें रहनेके बाद कुछ आराम मिलना चाहिये, मनुष्यको रिटायर्ड होनेका मौका मिलना चाहिये। अिस हालतमें आज समाज-शास्त्रीय चिंतनकी बहुत जरूरत है। अगर हरअेकके जीवनमें ये दो विभाग समुचित भावसे रहें तो आपको कार्यकर्ताओंकी किसी प्रकारकी कमी नहीं रहेगी और अुनका स्तर भी अूंचा रहेगा।

विनोबा

शिक्षाकी समस्या

लेखक: **गांधीजी**; अनु० **रामनारायण चौधरी**

कीमत ३-०-० डाकखर्च १-२-०

सच्ची शिक्षा

लेखक: **गांधीजी**; अनु० **रामनारायण चौधरी**

कीमत २-८-० डाकखर्च १-०-०

नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद-१४

समान भाषा और प्रजाभावना

समान भाषाका होना किसी देशके लोगोंमें भाअीचारा बढ़ानेका कितना जबरदस्त साधन है, यह हमारे देशमें ही नहीं बल्कि पड़ोसी देश पाकिस्तान और सिलोनमें भी आजकल देखनेको मिलता है। यह सच है कि भाषाके सरल कारणके साथ आर्थिक या राजनीतिक संकुचित स्वार्थ जुड़ जाते हैं, परन्तु अुस वजहसे प्रजा-भावना निर्माण करनेकी समान भाषामें जो शक्ति रहती है अुसे दोष नहीं दिया जा सकता। कुशल राजनीतिज्ञोंको समान भाषाकी अिस शक्तिके साथ जुड़े हुअे अैसे अनर्थोंको दूर करके भाषाके निर्दोष आधार पर जनताका संगठन करना चाहिये।

पाकिस्तानमें अुर्दू और बंगालीके बीच झगड़ा चल रहा है। पश्चिम पाकिस्तानका अैसा मत है कि केवल अुर्दू ही राजभाषा रखी जाय। पूर्व पाकिस्तान पश्चिम पाकिस्तानसे बड़ा है; वहां केवल बंगाली भाषा है। अिसलिअे वहांके नेता श्री फजलुल हकने हालमें कहा है कि अुर्दूके साथ बंगालीको भी राजभाषा रखा जाय, वर्ना पाकिस्तानका संविधान खतरेमें पड़ जायगा।

यही हाल आज सिलोनमें है। वहांकी बहुत बड़ी आबादीकी भाषा सिंहली है। परन्तु वहांकी लगभग १० लाख जनता तामिल-भाषी है। अिसलिअे यह सोचा जा रहा है कि सिंहलीके साथ तामिल भी राजभाषा रहे। परन्तु अेक पक्ष अैसा खड़ा हुआ है जो सिंहलीको ही राजभाषा बनाना चाहता है। अिस कारण तामिल-भाषी वर्ग कहता है कि अैसा होगा तो हमें 'तामिलनाड़'का अलग प्रदेश बनाना पड़ेगा। मतलब यह कि सिलोनका संविधान खतरेमें पड़ जायगा।

सौभाग्यकी बात है कि भारतकी राजभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें हमारे यहां अेकमत है। परन्तु प्रदेश-भाषाओं और हिन्दीके स्थान और अुपयोगके सम्बन्धमें मतभेद है, और भाषावार राज्य-रचनाके विषयमें जोरोंसे खींचातानी चल रही है। भाषाके सवालके साथ जुड़कर पैदा होनेवाले 'अतिरिक्त' अंग अिसमें संतापके कारण बन रहे हैं। अैसे अवांछनीय अंगोंको दूर करके समान भाषाके सम्बन्धवाला अेक निर्दोष संगठन-केन्द्र बनानेमें हमारा देश सफल हो जाय, तो कहा जायगा कि अुसने अपनी प्रगतिकी अेक बड़ी मंजिल तय कर ली।

अिस विषयमें बम्बअी तथा पंजाबमें तीव्र भावना फैली हुअी है। बम्बअी राज्यमें प्रश्न बम्बअी शहरका है। अिसका कारण है बम्बअीकी आर्थिक खुशहाली और अुसकी अर्वाचीन शानशौकत। सारे भारतवर्षके पुरुषार्थसे बनी हुअी और अंग्रेजी राज्यकी विरासत यह नगरी किसी अेकभाषी राज्यकी तो कैसे मानी जा सकती है? सब चाहते हैं कि महाराष्ट्र अिस बातको समझने और अुसकी कदर करने जितना देशाभिमान और समझौतेकी वृत्ति दिखावे।

पंजाबमें कौमवाद और भाषावाद दोनोंके मिलनेसे समस्या खड़ी हुअी है। हिन्दू और सिक्ख अपनेको अलग अलग धर्मकी कौमें मानकर चलते हैं और अुस न्यायसे पंजाबी और हिन्दी भाषायें तथा अुनकी अलग लिपियां (गुरुमुखी और नागरी) अिस झगड़ेको बढ़ानेका काम करती हैं। हिमाचल प्रदेशका स्थान बीचमें अुलझन बना हुआ है। अिस समस्याको हम हल कर लें तो कहा जायगा कि कौमवादके विचारोंमें भी हमने काफी सुधार कर लिया है।

८-११-'५५ **मगनभाई देसाई**

(गुजरातीसे)

www.vinoba.in

चर्म-अुद्योगका विकास

भारतमें ढोरोंकी संख्या दुनियाके किसी भी देशसे अधिक है। अिसलिअे स्वभावतः यह हमारे देशका अेक बड़ा ग्रामोद्योग है। आज भी ८० प्रतिशत चमड़ा कमानेका काम तथा ९० प्रतिशत जूते बनानेका काम हाथसे ही होता है। अिस चमड़ेका अुत्पादन अधिकतर कुदरती रूपमें मरनेवाले ढोरोंकी संख्या पर आधार रखता है। कतल किये जानेवाले ढोरोंकी संख्या हमारे यहां बहुत थोड़ी है। अिसके सिवा, कानून तथा सामाजिक और आर्थिक बन्धनोंके कारण मरे हुअे ढोरोंके शव भी ठीक समय पर नहीं मिलते। अिसके फलस्वरूप अच्छा चमड़ा नहीं मिलता, जिससे देशको प्रति-वर्ष लगभग १० करोड़ रुपयेका नुकसान अुठाना पड़ता है। फिर, दोषपूर्ण पद्धतियोंके कारण अिस अुद्योगमें काम करनेवालोंको भी पूरी कमाअी नहीं मिलती। अिससे अुनकी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ी हुअी है।

अिस अुद्योगमें भी यंत्रोंका प्रवेश हो गया है। हमारे देशमें २४ यंत्रों द्वारा काम करनेवाले बड़े पैमानेके, ५०० हाथसे काम करनेवाले बड़े पैमानेके और २५० यंत्रों द्वारा काम करनेवाले लेकिन छोटे पैमानेके चमड़ा कमानेके कारखाने हैं। अुनमें ३५,६५० आदमियोंको रोजी मिलती है। यही काम गांवोंमें व्यक्तिगत रूपमें चमार करते हैं। अुसमें ५४,००० लोगोंको काम मिलनेका अन्दाज लगाया गया है। अिसमें अुनके कुटुम्बके लोगोंका समावेश नहीं किया गया है। अिस अुद्योगके पूरक अुद्योग यानी जूते बनानेके अुद्योगमें अिस समय १२ बड़े पैमानेके कारखाने काम कर रहे हैं, और छोटे पैमानेके तो असंख्य कारखाने हैं। १९५४ में ९ करोड़ ४ लाख जूते भारतमें बने थे। अिनमें से ५४ लाख यानी ५.९ प्रतिशत बड़े कारखानोंमें और बाकीके ९४ प्रतिशत छोटे कारखानों और गांवोंमें बने थे। १९५१ की जनगणनाके अनुसार अिस अुद्योगमें ४,०१,६७२ कारीगर काम करते हैं।

अिस अुद्योगके विकासके लिअे नीचेकी बातों पर ध्यान देना जरूरी है:

१. ढोरके शवकी ठीक समय पर प्राप्ति और अुसके सारे अवशेषोंका पूरा अुपयोग।

२. तालीम पाये हुअे निरीक्षकोंकी देखरेखमें सुधरी हुअी पद्धतियोंसे चमड़ा कमाना।

३. चुने हुअे केन्द्रोंमें अैसी तालीमकी व्यवस्था करना, जिससे चमड़ेकी जातमें सुधार हो।

४. अिस अुद्योगके कारीगरोंको व्यवस्थित और योजनाबद्ध सहायता।

अिस अुद्योगके विकासके लिअे यह जरूरी है कि बड़े कारखानोंकी होड़ पर रोक लगाअी जाय; अिसके लिअे अुद्योगके अिन दोनों विभागोंके लिअे अुत्पादनका समान कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये। परन्तु अैसा कार्यक्रम बनाया जा सके, अिससे पहले यह जान लेना चाहिये कि हमारे देशमें चमड़ेकी और अुससे बननेवाले मालकी कितनी जरूरत आज है और आगे होगी।

१९५४ में देशके भीतर १०८.५ लाख बड़े चमड़ोंकी और ४२.५ लाख छोटे चमड़ोंकी मांग थी; और निर्यात २६ लाख पकाये हुअे तथा ६५ लाख कच्चे चमड़ोंका हुआ था। यह अन्दाज लगाया गया है कि दूसरी पंचवर्षीय योजनाके दौरानमें जूतोंकी खपत, जो आज गांवोंमें प्रति ५ व्यक्तियों पर १ जोड़ और शहरोंमें प्रति २ व्यक्तियों पर १ जोड़ है, बढ़कर गांवमें प्रति ९ व्यक्तियों पर २ जोड़ और शहरमें प्रति ५ व्यक्तियों पर २ जोड़ हो जायगी। अर्थात् जूतोंकी जरूरतमें २० प्रतिशत वृद्धि होगी। चमड़ेकी जात सुधर जानेसे विदेशोंका निर्यात भी बढ़ेगा। अिस तरह कुल मिलाकर १७६.४ लाख बड़े चमड़ों और १३२.४ लाख छोटे चमड़ोंकी मांग रहेगी। साथ ही साथ, ढोरोंकी संख्या भी हर साल २ प्रतिशत बढ़कर ३४१२ लाख हो जायगी। अिसके फलस्वरूप १९६१ में २९० लाख बड़े चमड़े और ४६९ लाख छोटे चमड़े मिल सकेंगे।

अिसलिअे अब प्रश्न अुत्पादनका सामान्य कार्यक्रम बनानेका रह जाता है। खादी ग्रामोद्योग बोर्डका सुझाव यह कार्यक्रम अिस प्रकार बनानेका है:

१. चमड़ा पकानेवाले यांत्रिक कारखानोंकी १९५४ की अुत्पादन शक्तिमें वृद्धि न होने दी जाय।

२. ६० लाख बड़े चमड़े और ७० लाख छोटे चमड़े पकानेका कार्य ग्रामोद्योगोंको सौंपा जाय।

३. ४० लाख छोटे चमड़े बड़े पैमानेके यांत्रिक कारखानोंको सौंपे जायं और १० लाख छोटे चमड़े छोटे पैमानेके यांत्रिक कारखानोंको सौंपे जायं।

४. बाहर भेजे जानेवाले कच्चे छोटे चमड़ोंकी वार्षिक संख्या तय कर दी जाय और अुत्तरोत्तर अुनका निर्यात घटाया जाय।

५. जंगलोंसे प्राप्त होनेवाले चमड़ा कमानेके साधनोंकी रक्षा की जाय और मद्रास और अुत्तर प्रदेशमें खास तौर पर अुन्हें बोया जाय।

६. ढोरोंके चमड़ेको नुकसान पहुंचानेवाली दाग लगानेकी या आर चुभानेकी प्रथाके सम्बन्धमें तथा ढोरोंके शव अुठानेमें पैदा होनेवाली कठिनाअियां दूर करनेके सम्बन्धमें कानून बनाये जायं।

६. जूतोंका सारा अतिरिक्त अुत्पादन ग्रामोद्योगके लिअे सुरक्षित कर दिया जाय।

८. गांवोंके कारीगरोंको कच्चा माल प्राप्त करने और अपना माल बेचनेमें मदद की जाय।

अिस अुद्योगके विकासके लिअे बोर्डने दूसरी पंचवर्षीय योजनामें ३,००० शव प्राप्त करनेके केन्द्र, ३०० गांवोंमें चमड़ा कमानेके केन्द्र और ७५ गोंद बनानेके केन्द्र खोलने तथा ३०,००० मोची तैयार करनेकी सूचना की है। साथ ही ४ शव-प्राप्तिके तालीम केन्द्र, २० चमड़ा कमानेके तालीम केन्द्र, ८० घूमनेवाले मंडल और ५० बिक्री-केन्द्र खोलनेकी भी सूचना की है।

अूपरके तंत्रकी रचना करनेमें कुल ३१४.१ लाख रुपये खर्च होंगे। अिसके सिवा, अिस अुद्योगको प्रोत्साहन देनेके लिअे कर्ज और राहतके रूपमें १५४.९५ लाख रुपये देने तथा सारे केन्द्रोंको चालू पूंजीके लिअे १५४.८५ लाख रुपये देनेकी बोर्डने सूचना की है।

अिस सारी योजनाका कुल खर्च ५.४ करोड़ रुपये होगा, जब कि दूसरी ओर अिसके फलस्वरूप ३८,२५० अधिक आदमियोंको रोजी मिलेगी और ६४२.८ लाख रुपयेका माल अुत्पन्न होगा।

यह पशु-पालनके साथ जुड़ा हुआ बुनियादी अुद्योग है, अिसलिअे अूपर बताअी दृष्टिसे अिसका विकास करना जरूरी है। अिससे दो लाभ होंगे: (१) राष्ट्रीय धनकी बरबादी नहीं होगी और (२) नया धन पैदा होगा तथा लोगोंको घर बैठे रोजी मिलेगी।

(गुजरातीसे) वि०

हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण

लेखक: गांधीजी

संपादक: भारतन् कुमारप्पा

कीमत १-८-० डाकखर्च ०-५-०

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४

www.vinoba.in

हरिजनसेवक

२६ नवम्बर १९५५

राजभाषा कमीशन

अब तक पाठकोंने राजभाषा कमीशनके अध्यक्ष श्री बी० जी० खेरका अत्यन्त विचारप्रेरक भाषण* देखा और पढ़ लिया होगा। मुझे लगता है कि पाठकोंको राजभाषा कमीशनका परिचय करानेमें मैंने देर कर दी। वह काम मैं अब कर रहा हूं।

राष्ट्रपतिने भारतीय संविधानकी धारा ३४४ के अनुसार अिस कमीशनकी नियुक्ति की थी, जो संविधानके आरंभसे पांच वर्ष बाद राष्ट्रपतिके लिअे अैसा करना जरूरी ठहराती है। अुस धारामें बताया गया है कि अिस कमीशनमें अेक अध्यक्ष और संविधानकी आठवीं सूचीमें गिनाअी गअी भारतकी विभिन्न भाषाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाले दूसरे सदस्य होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करेंगे। अिस तरह अिस कमीशनमें संविधानमें अुल्लिखित भारतकी १४ भाषाओंमें से हरअेकके प्रतिनिधि हैं।

कमीशनको जिन विषयोंकी जांच करनी है, वे नीचे दिये जाते हैं:

"१. कमीशनका यह कर्तव्य होगा कि वह नीचे लिखी बातोंके बारेमें राष्ट्रपतिसे सिफारिश करे —

(अ) संघके सरकारी हेतुओंके लिअे हिन्दी भाषाका अुत्तरोत्तर बढ़ता हुआ अुपयोग;

(ब) संघके सरकारी हेतुओंमें से सब या किसी अेकके लिअे अंग्रेजी भाषाके अुपयोग पर प्रतिबन्ध;

(स) धारा ३४८ में बताये गये हेतुओंमें से सब या किसी अेकके लिअे अुपयोगमें ली जानेवाली भाषा+;

(द) संघके खास तौर पर बताये हुअे हेतुओंमें से अेक या अधिकके लिअे अुपयोग किये जानेवाले अंकोंका रूप;

(घ) समयकी अैसी सूची तैयार करना तथा अैसा तरीका बताना जिसके मुताबिक हिन्दी धीरे धीरे संघकी राजभाषाके नाते तथा संघ और राज्य-सरकारों और अेक राज्य-सरकार व दूसरी राज्य-सरकारके बीचके व्यवहारकी भाषाके नाते अंग्रेजीका स्थान ले सके।

"२. अपनी सिफारिशें करनेमें कमीशन भारतकी औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगतिका तथा सरकारी नौकरियोंके सम्बन्धमें अ-हिन्दीभाषी प्रदेशोंके लोगोंके न्यायपूर्ण दावों और हितोंका अुचित ध्यान रखेगा।"

कमीशन तुरन्त अुसे सौंपे हुअे काममें लग गया। अुसने अेक व्यापक प्रश्नावली प्रकाशित की, और अब वह देशका दौरा करके अुन मुद्दों पर लोगोंकी साक्षी अिकट्ठी कर रहा है जिन पर अुसे अपनी रिपोर्ट पेश करनी है। ये मुद्दे सामान्यतः अूपर बताये गये जांचके विषयोंमें आ गये हैं।

पाठक देखेंगे कि संविधानके मातहत कमीशनको जो मुख्य कार्य सौंपा गया है वह अिस बातका निश्चय करनेका है कि संघके सरकारी हेतुओंके लिअे हिन्दीका बढ़ता हुआ अुपयोग कैसे किया जा सकता है, और अिसके लिअे अेक समय-सूची तैयार करनेका है। ये दोनों बातें अूपर बताये गये जांचके विषयोंसे सम्बन्धित पैरा – १(घ) में स्पष्ट रूपसे कही गअी हैं। स्कूलों और कॉलेजोंमें हिन्दीके अुपयोग और शिक्षणके बारेमें कोअी निर्णय करना राजभाषा कमीशनका सीधा कार्य नहीं है, जैसा कि कुछ लोग मानते मालूम होते हैं। यह अेक अैसा प्रश्न है, जिसकी छानबीन पहले दो कमीशन — अुच्च शिक्षाके लिअे राधाकृष्णन् कमीशन और माध्यमिक शिक्षाके लिअे मुदालियर कमीशन् — कर चुके हैं और सरकारके सामने अुनकी रिपोर्टें भी पेश हो चुकी हैं। लेकिन अूपरका पैरा – २ परोक्ष रूपमें यह कहता है कि कमीशन जांच-सम्बन्धी विषयोंके पैरा – १ में बताये गये मुद्दोंके बारेमें अपनी सिफारिशें पेश करते समय भारतकी औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगतिका तथा सरकारी नौकरियोंके सम्बन्धमें अ-हिन्दीभाषी लोगोंके न्यायपूर्ण दावों और हितोंका अुचित ध्यान रखेगा। अिससे कुछ शिक्षा-सम्बन्धी और शासन-सम्बन्धी मुद्दोंकी गौण जांच करना कमीशनके लिअे जरूरी हो सकता है; राजभाषा कमीशन द्वारा प्रकाशित प्रश्नावली अिन मुद्दोंको काफी हद तक छूती है।

कमीशनके अध्यक्षने पूनाके अपने भाषणमें ठीक ही कहा है कि "अिस पेचीदा प्रश्न पर ब्यौरेवार विचार करते समय पैदा होनेवाले अनेक मुद्दोंमें से किसी भी मुद्दे पर कोअी विचार प्रकट करना मेरे लिअे अनुचित और असामयिक होगा, और अिस विषय पर आजकी अवस्थामें कमीशनको और अुसके अध्यक्षके नाते मुझे बिलकुल खुला दिमाग रखना चाहिये।" यह नियम अुस कमीशनके अेक सदस्यके नाते मुझे भी लागू होता है। अनेक कारणोंमें अेक कारण यह भी था जिसने अभी तक अिस बारेमें कुछ लिखनेसे मुझे रोक रखा था।

जैसा कि मैंने शुरूमें कहा है, यह लेख मैं राजभाषा कमीशनके अध्यक्षने पूनामें जो महत्त्वपूर्ण बातें अपने भाषणमें कहीं अुनकी नोंध लेनेके लिअे और प्रसंगवश पाठकोंको कमीशनका परिचय करानेके लिअे ही लिख रहा हूं। यह कहनेकी तो जरूरत नहीं है कि भारतकी लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक प्रगति और विकासकी दृष्टिसे अिस कमीशनका बहुत बड़ा महत्त्व है। राज्य-पुनर्रचना कमीशनने हालमें अैसा ही महत्त्व रखनेवाले अेक प्रश्न — संघके राज्योंकी पुनर्रचनाके प्रश्न — पर अपनी रिपोर्ट राष्ट्रके सामने प्रस्तुत की है। और यह पुनर्रचना मोटे तौर पर संविधानमें गिनाअी गअी १४ भारतीय भाषाओंके आधार पर ही होगी। अब राजभाषा कमीशनको यह भी तय करना होगा कि संघकी राजभाषा हिन्दीको नूतन भारतमें, जिसका निर्माण हो रहा है, "संघ और राज्य-सरकारों तथा अेक राज्य-सरकार और दूसरी राज्य-सरकारके बीचके व्यवहार" की अखिल भारतीय भाषाके रूपमें कैसे काम करना चाहिये। यह स्पष्ट है कि अिस तरह काम करते हुअे हिन्दी अेक राष्ट्रके नाते हमारी अेकताका निर्माण करनेवाला अेक जीवित माध्यम बन जायगी।

श्री खेरने अपने पूनाके भाषणमें कुछ बुनियादी सिद्धान्त पेश किये हैं, जिनके आधार पर अिस प्रक्रियाका विकास होना चाहिये। पहला सिद्धान्त, जैसा कि अुन्होंने कहा, है "हमारे समाजमें आज अंग्रेजी भाषाने जो स्थान प्राप्त कर लिया है, अुस स्थानसे अुसे हटानेका"। जैसा कि अुन्होंने बताया, बेशक अिसका यह अर्थ नहीं कि हम अुस महान् भाषाका अध्ययन न करें। अिसके विपरीत, हमें "अंग्रेजी भाषा पर और/या दूसरी किसी अनुकूल विदेशी भाषा अथवा भाषाओं पर काफी अधिकार रखना चाहिये, ताकि वे भारतीय भाषाओंमें अभी तक अप्राप्य ज्ञानभण्डारकी 'कुंजी' का और दुनियामें निरंतर हो रही शिल्पविज्ञान और

---

* देखिये 'हरिजनसेवक' के ता० २९–१०–'५५ और ता० ५–११–'५५ के अंक।

+ धारा ३४८ में बताये गये हेतु अिस प्रकार हैं: (१) सुप्रीम कोर्टकी और प्रत्येक हाअीकोर्टकी कार्रवाअी, (२) पार्लमेन्ट और सारी राज्य-धारासभाओंके बिल और अेक्ट, (३) संविधानके मातहत या पार्लमेन्ट अथवा किसी राज्यकी धारासभा द्वारा बनाये गये कानूनके मातहत निकाली जानेवाली सारी आज्ञायें, नियम, नियंत्रण और अुप-कानून।

www.vinoba.in

वैज्ञानिक ज्ञानकी तेज प्रगतिके लिअे 'खिड़की' का काम दे सकें।" सारा मुद्दा, जैसा कि अुन्होंने बहुत संक्षेपमें अपने भाषणमें रखा था, यह है कि "बालिग मताधिकार, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षण, सामाजिक न्याय और समान अवसरोंकी वृद्धि आदिके जरिये हम अुचित समयमें जो देशव्यापी राष्ट्रीय अुत्थान और नवनिर्माण करनेके लिअे वचनबद्ध हैं, अुसे मेरी रायमें भारतीय भाषाओंके सिवा अन्य किसी भाषाके द्वारा करनेकी कल्पना नहीं की जा सकती। बेशक, संविधानकी धाराओंने यह प्रश्न हल कर ही दिया है, अिसलिअे यहां अुस पर फिरसे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है।" अथवा जैसा कि श्री खेरने स्पष्ट रूपमें कहा, "भाषाके सम्बन्धमें राष्ट्रीय स्वाभिमानके विचारोंका बेशक महत्त्व है, क्योंकि वह किसी प्रजाके सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवनको बहुत गहराअीसे छूती है।"

अिसलिअे श्री खेरने यह चेतावनी भी दी है कि "भाषा-सम्बन्धी जो अटपटी और ब्यौरेवार क्रान्ति हमें करनी है, अुसमें" यह याद रखना चाहिये कि "कोअी जीवित भाषा रोजकी बोलचालकी भाषामें, सामान्य व्यावहारिक दुनियामें और बाजारमें जिन्दा रहती है, न कि शब्दकोश रचनेवालोंके शब्दकोशोंमें।... साधारण मनुष्यको भाषाकी शुद्धिके सिद्धान्तोंमें कोअी दिलचस्पी नहीं होती, और शायद अुसकी यह वृत्ति ठीक है।"

अेक दूसरा महत्त्वका मुद्दा, जो श्री खेर हमारे ध्यानमें लाये, यह है कि "संविधानने भारतकी सारी भाषाओं और लिपियोंको काफी संरक्षण और गारंटियां देनेकी भी व्यवस्था की है।" अिसलिअे संघके सरकारी हेतुओंके लिअे हिन्दी भाषाके बढ़नेवाले अुपयोगको दृष्टिमें रखते हुअे हमारी भाषाकी समस्या "व्यावहारिक नीतिकी समस्या है, जिस पर धार्मिक या पुनरुत्थानवादकी दृष्टिसे भिन्न धर्मनिरपेक्ष दृष्टिसे, प्रान्तीय या साम्प्रदायिकसे भिन्न राष्ट्रीय दृष्टिसे और सैद्धान्तिकसे भिन्न व्यावहारिक दृष्टिसे विचार किया जाना चाहिये।"

ये कुछ मुख्य मुद्दे हैं, जो श्री खेरने देशके सामने रखे हैं। हम कह सकते हैं कि भावी भारतके भाषावार स्वरूपका, जिसकी व्याख्या खुद संविधानने सामान्य शब्दोंमें हमारे लिअे कर दी है, ग्राफ खींचनेके लिअे ये मुख्य अक्ष हैं।

१२–११–'५५ **मगनभाई देसाई**
(अंग्रेजीसे)

जीवन और संहारका स्तर

१५ सितम्बर, १९५५ का 'पीस न्यूज' नीचेकी खबर देता है:

"'डास अेन्डरे डचूशलैण्ड' नामक अेक जर्मन अखबार युद्धमें अेक दुश्मन सैनिकको मारनेके लिअे हुअे खर्चके अंदाजी आंकड़े, जो अमेरिकन डॉक्टरी परिषद्के सामने पेश किये गये थे, अिस प्रकार देता है:

	पौं०	शि०	पेंस
जूलियस सीज़रने खर्च किये	—	३	४
नेपोलियनने खर्च किये	१०००	—	—
अमेरिकाकी आजादीके लिअे लड़े गये युद्धमें हुआ खर्च	१६६६	—	—
पहले विश्वयुद्धमें मित्रराष्ट्रों द्वारा किया गया खर्च	७५००	—	—
दूसरे विश्वयुद्धमें अकेले अमेरिका द्वारा प्रत्येक मृत जर्मन या जापानी सैनिकके लिअे किया गया खर्च	७५०००	—	—"

अिस प्रकार जीवनके स्तरके साथ पश्चिमके देशोंमें संहारका खर्च भी बढ़ता रहा है! आज भीतर ही भीतर लड़ रही पश्चिमी दुनियाकी नयी अर्थरचनाके निर्माणमें अिन दोनों बातोंने मिलकर तो हाथ नहीं बंटाया हो?

३–११–'५५ **म० प्र०**
(अंग्रेजीसे)

लोकशाही और निष्णातशाही

बम्बअीकी निचली विधानसभामें वल्लभ विद्यापीठके बिलकी चर्चा हो रही थी, अुस समय — अैसा मालूम होता है कि वाद-विवादकी गर्मीमें — मुख्यमंत्रीने कहा कि निष्णात लोग कोअी देवता नहीं हैं कि वे जो कहें अुसे वेद-वाक्य मान लिया जाय। और फिर व्यंगपूर्वक प्रश्न किया कि निष्णात लोगोंको कभी अेकमत होते हुअे देखा है? अखबारवालोंने अुनकी अिस अुक्तिको जरा ज्यादा अुठा लिया, अन्यथा बात विनोदमें लेने-जैसी ही थी।

जहां तक हम सर्वज्ञ नहीं हुअे, वहां तक दूसरेकी बात सुनना तो पड़ेगी ही। और निष्णातों पर तो हम सभी हर कदम पर जाने-अनजाने आधार रखते हैं। लेकिन अुसका अर्थ यह हरगिज नहीं है कि हम अपनी सामान्य विवेकशक्ति दूसरोंको सौंप दें। किसी भी अेकांतिक 'शाही' की तरह निष्णातशाही भी अनिष्ट है।

लेकिन हमारा ही विवेक सही है, अैसा भी नहीं माना जा सकता यद्यपि विवेक-शक्तिका अुपयोग करना चाहिये, यह मनुष्यके बुद्धि-व्यापारका कानून है; हां, यह अुपयोग नम्रतापूर्वक होना चाहिये।

लेकिन मुख्यमंत्रीके अिस विधानके विषयमें बी० सी० जी० वाले क्या कहते हैं? वे क्या मानकर चलते हैं? वे तो निष्णातोंकी ही बातको मानकर चलते हैं, अैसा मालूम होता है। निष्णात लोग शायद ही कभी अेकमत होते हैं, यह बात यहां तो और भी सच है। कुछ डॉक्टर कहते हैं कि बी० सी० जी० अच्छी चीज है, तो अितने ही कुशल डॉक्टर अिसकी अुलटी बात कहते हैं। सरकारें अिनमें से पहले पक्षके निष्णातोंको देवता मानकर ही तो चल रही हैं! वे अुन्हें सचमुच देवता मानती हैं, क्योंकि निष्णात लोग तो अैसा दावा करते हैं कि हम दवाके द्वारा क्षयसे मुक्ति देकर गोया देवताका वरदान ही देते हैं। अुदाहरणके लिअे, केन्द्रीय सरकारकी आरोग्य-मंत्री राजकुमारी श्री अमृतकुंवर कहती हैं कि डॉ० राय और डॉ० जीवराज जैसे डॉक्टर बी० सी० जी० की लसीको अच्छा कहते हैं। अिसलिअे अब देशके बच्चोंकी खैर नहीं है; वे अिस लसीके झपाटेसे बच नहीं सकते!

लेकिन राजाजी यहां अलग पड़ते हैं। वे कहते हैं कि निष्णात लोग तो बी० सी० जी० के खिलाफ भी कहते हैं। अिसलिअे हमें निष्णात लोगोंसे आतंकित नहीं होना चाहिये। हमें अिस लसीके बारेमें स्वतंत्र विचार करना चाहिये। निष्णात डॉक्टर लोग तो हमेशा अिन्हीं बातोंमें व्यस्त रहते हैं, अिसलिअे अुनके विचार ज्यादा रंगे हुअे होते हैं। अिसके सिवा डॉक्टरी निष्णातोंमें भी तो दो मत हैं!

अिन निष्णात लोगोंका कोअी अलग तर्कशास्त्र होता है, अैसा मालूम होता है। युद्धकालमें जब लोगोंको 'मिलो' खिलानेकी आवश्यकता पड़ गअी थी, अुस समय वे अुसके अनुकूल तर्क — और वह भी शास्त्र-शुद्ध परिभाषामें — प्रकाशित करते थे। जब गेहूं कम मिलते और बाजरी ज्यादा मिलती थी, अुस समय बाजरीके आहार-सम्बन्धी गुण-दोषके बारेमें समझाकर लोगोंको अुसके अनुकूल बनानेका प्रयत्न करते थे। और ज्यादा ताजा अुदाहरण चाहिये तो वनस्पतिका मौजूद है!

'जिसका खाओ धान, अुसका गाओ गान' अिस अर्थकी अेक अंग्रेजी कहावत है। विज्ञानमें भी अब अेक 'गवर्नमेंट सब्सिडाअिज्ड (यानी सरकारी पैसेके बल पर चलनेवाला) विज्ञान' चल पड़ा है। वैज्ञानिक अनुसंधानका खर्च आज अितना ज्यादा होता है कि वैज्ञानिकोंको अुसके लिअे सरकारकी शरण लेना पड़ती है। और दुनिया भरमें सरकारें किस तरह चलती हैं, यह तो सब

www.vinoba.in

जानते हैं। वे मतभेद या विरोध झट सहन नहीं करतीं, विरोध अुन्हें अच्छा नहीं लगता। अुसके नौकरोंको तो अिस सम्बन्धमें अन्तमें चुप्पी स्वीकार करके शिस्तका पालन करना ही पड़ता है। और यह जाहिर है कि जो अुसके अनुकूल होते हैं अुन्हें सरकार अपने कामकी हद तक प्रमाणभूत निष्णात मानती है।

यह सब होते हुअे भी सार्वजनिक कामोंके लिअे निष्णातोंके झगड़ोंमें से रास्ता तो निकालना ही चाहिये। और यह रास्ता सच्चा हो अिसकी सावधानी भी रखनी चाहिये। यह किस तरह होता है अुससे ही अिस बातकी परीक्षा होती है कि देशका कारोबार किस 'शाही' से चल रहा है। अुसीसे यह प्रगट होता है कि लोकशाही चल रही है या निष्णातशाही, या तानाशाही। लोकशाही निष्णातशाही नहीं है, लेकिन वह निष्णातोंका अिनकार नहीं करती। वह अुनकी मदद लेती है, लेकिन अुनके पीछे-पीछे नहीं चलती। अिसी कारण हम देखते हैं कि अधिकांश राज्योंमें निर्माण-विभागमें अिन्जीनियर या आरोग्य-विभागमें डॉक्टर-वैद्य मंत्री नहीं होते। यद्यपि बी० सी० जी० के बारेमें तो वे अपने अनुकूल निष्णातोंको देवता मानकर चलते हैं, और दूसरे विचारको रोकते, दबाते हैं या नगण्य समझते हैं। अिसी बातकी राजाजी टीका करते हैं।

निष्णात और शासनाधिकारी

मुझे लगता है कि निष्णातों और शासनाधिकारियोंमें गजग्राह जैसी खींचतान लोकशाहीका अेक सामान्य भयस्थान है। क्या अैसा नहीं है? निष्णात तो निष्णात ही है। किसी अेक विषयके बारेमें वह अितना अधिक जानता है कि अुसके दिमागमें किसी भिन्न विचार या अनुमानके लिअे जगह ही नहीं होती। शासनाधिकारीकी बात अिससे अुलटी होती है। अुसे अनेक बाजुओंकी फुटकर, रंग-बिरंगी या मिर्च-मसालेवाली अपार जानकारी होती है। परन्तु अुसकी दृष्टि मुख्यतः अिस बात पर केन्द्रित रहती है कि अुसकी व्यवस्था ठीक चलनी चाहिये। लेकिन व्यवस्थाका भ्रष्टार्थ भी हो जाता है; अधिकारी अैसा समझने लगते हैं कि व्यवस्था यानी जो बात या विचार अुन्हें मंजूर हो वह, यानी अुनकी अपनी सत्ता। अिसीलिअे तो भारतके विगत राज्यकालमें शासनका स्वरूप नौकरशाहीका हो गया था।

राज्य-व्यवस्थाका काम भी अेक निष्णातों द्वारा किया जानेवाला कार्य ही है, और अुस अर्थमें शासनाधिकारियोंकी गिनती भी निष्णातोंमें की जा सकती है। लोकशाही अिसके भी परेकी चीज है।

श्री जयकरने, कअी वर्ष हुअे, अिस विषयकी चर्चा करते हुअे अेक अुदाहरण दिया था। अुन्होंने कहा था कि कल्पना करो कि हमें कोअी अिन्जीनियरिंगसे सम्बन्धित काम करना है। अिन्जीनियर लोग कहेंगे कि अैसा करो, वैसा करो। वे तो पहले अपनी विद्याका प्रदर्शन करनेकी बात सोचेंगे और कामकी जरूरतको गौण स्थान देकर अुसके अन्दर बिठानेकी कोशिश करेंगे। होना अैसा चाहिये कि कामकी जरूरत शासनाधिकारी बताये और अुसके अनुसार अिन्जीनियर अपनी विद्या बतलाये। अब अिसके बदले अगर अिन्जीनियर अपनी विद्याके अनुसार कामकी योजना करनेको कहे और शासनाधिकारी अुसके कहे अनुसार चले तो? अिसे निष्णातशाही कहना पड़ेगा। शासनाधिकारीकी दृष्टि अुससे आगे जाती है। अिन्जीनियरकी विशेषज्ञता अिसमें है कि बताया हुआ काम किस तरह किया जाय, अिसमें नहीं कि कौन-सा काम किया जाय। किन्तु कअी बार निष्णात लोग अिस बारीक मर्यादाको लांघ जाते हैं और व्यवस्थापक अुसमें फंस जाते हैं। अिसीलिअे कहा जाता है कि राज्य-व्यवस्थापक केवल व्यवस्थापक ही न हों, अुन्हें अुदारनीतिज्ञ राजपुरुष होना चाहिये और अपने अहं पर नियंत्रण रखना आना चाहिये।

२६-९-'५५ मगनभाई देसाई

(गुजरातीसे)

विविध विचार

वर्षगांठ मनाना

मेरे खयालमें वर्षगांठ मनानेका रिवाज दुनियाकी सारी प्रजाओंमें होगा। कोअी समाज-विज्ञान-शास्त्री खोज करके बतावे तो अिस सम्बन्धकी जानने लायक बातें सामने आयेंगी।

जन्मदिन मनानेमें अेक विशेष आनन्दका भाव होता है। अेकाध सन्त, भक्त या दार्शनिकके सिवाय दुनियाके सभी लोग अिसमें आनन्द अनुभव करते होंगे। अिसका कारण स्पष्ट है। मूलमें देखा जाय तो वर्षगांठ सदा सर्वदा आनन्दमय अनन्त जीवनका अुत्सव है; सदा बहनेवाले जीवनकी अमृतताकी प्रतीकरूप वर्षगांठके द्वारा हम अुस परम प्रभुको अपना अर्घ्य अर्पण करते हैं। परन्तु आनन्दके अिस मूल कारणको जाने बिना सब लोग सामान्यतः व्यवहार करते हैं और जन्मदिवसका आनन्द मनाते हैं।

भिन्न भिन्न प्रजायें जन्मदिन जिस तरह मनाती हैं, अुसकी विधि या रीति ध्यान देने जैसी होती है। अुदाहरणके लिअे, युरोपमें लोग अमुक वजन और आकारकी 'केक' बनाते हैं, अुसे काटते हैं और सबको अुसका टुकड़ा टुकड़ा बांटते हैं। मानो वे अपने शरीरका अेक भाग देकर सबके साथ अपनी अेकता और प्रेम प्रकट करते हैं। आयुकी संख्याके अनुसार दीये जलाते हैं और अुन्हें बुझानेकी विधि पूरी करते हैं। अिसके पीछे कहीं यह भावना तो नहीं हो कि अन्तमें जीवन-दीप बुझने ही वाला है!

'हरिजन' के अेक पाठकने अुत्तरभारतसे पत्र लिखकर पूछा है कि हम जो वर्षगांठ मनाते हैं, अुसमें क्या अिस बातका भी आनन्द नहीं मनाते कि 'मरण-गांठ' अेक वर्ष और नजदीक आअी है? बात सच है। लेकिन दुनियाके साधारण लोग अिस तरफ नहीं देखते।

हमारे देशमें वर्षगांठ मनानेका कोअी व्यापक संस्कार नहीं है। पश्चिमके लोगोंकी देखादेखी शायद यह बढ़ने लगा है, और सुखी व खुशहाल लोग ही अुसे मनाते हैं। परन्तु यह बहुत व्यापक रिवाज तो नहीं कहा जा सकता।

फिर भी क्या अैसा नहीं लगता कि सार्वजनिक जीवनके क्षेत्रमें आजकल यह बात कुछ बढ़ने लगी है? यह युग विज्ञापन-बाजीका है; किसी न किसी तरह अधिकसे अधिक प्रसंगोंका आयोजन करके समारोह करनेकी वृत्ति बढ़ती जा रही है। वर्षगांठ 'वनप्रवेश', षष्ठिपूर्ति, जयंती, यह दिवस-वह दिवस, अमुक व्यक्तिके लिअे अभिनन्दन-सभा वगैरा तरीके मशहूर हो गये हैं। पुस्तक प्रकाशनकी विधि भी होने लगी है। अिन सबके पीछे सार्वजनिक जीवनमें अैसे मौके देखनेकी भूख — और कुछ लोगोंके लिअे तो चटपटी भी कहा जा सकता है — काम करती होती है। अैसे प्रसंगोंका आयोजन किसके लिअे किया जाता है, यह भी सूचक होता है। अखबारवाले अुनके चित्रों सहित समाचार देकर अिन भावोंको प्रोत्साहन देते हैं। और अिन सबमें अेक खास सामाजिक विवेक और अभिरुचिसे आगे बढ़कर खुशामद और दंभ वगैराकी भी गंध आने लगती है, अैसा अिशारा अुपरोक्त पत्रकारने किया है।

अिन सबमें आगे चलकर अैसा भी होने लगता है कि बड़े आदमियोंको अपनी स्तुति सुनना पसंद आता है और अुनकी

www.vinoba.in

स्तुति करनेवाले जब अुनके मानमें समारोह करनेके मौकेकी ताकमें रहते हैं तो बड़े आदमी अैसे मौके तुरन्त ढूंढ़कर दे भी देते हैं। अिस तरह परस्पर भावसे यह सब चलता है! समाजके स्वास्थ्यके लिअे अिन समारोहोंमें भी अमुक हद तक सुरुचि, विवेक-मर्यादा वगैराका आना आवश्यक है। वर्ना सार्वजनिक जीवनके वातावरणमें दंभ, खुशामद वगैराकी गंध बहुत ज्यादा बढ़ जानेसे दम घुटनेकी नौबत आ सकती है। स्व० रमणभाअी नीलकंठने वर्षों पूर्व 'मानपत्रके पाठ' द्वारा अिस विषयमें जो व्यंग किया था, वह क्या सार्वजनिक जीवनमें सदा जीवित रहनेवाली वस्तु नहीं है?

२५-९-'५५ म० प्र०

विद्यार्थी-मंडलोंकी परेशानी

अखिल गुजरात विद्यार्थी कांग्रेसकी बैठक ता० २४-९-'५५ को खेरवा (जिला महेसाणा) में हुअी। अुसमें मंगल-प्रवचन करनेके लिअे मुझे बुलाया गया था। अुस संबंधमें विद्यार्थी कांग्रेसके मंत्रीने अपने पत्रमें जो कुछ लिखा था, वह शिक्षा-जगत्के सामने रखने जैसा है। अुन्होंने लिखा था:

"मेरी और विद्यार्थी-प्रवृत्तिकी जो परेशानी है, अुसके निवारणके लिअे आप अुद्घाटनके मौके पर कुछ मार्गदर्शन कर सकें, अिस हेतुसे नीचेकी बातें केवल सूचनाके रूपमें नम्रभावसे आपके सामने रखता हूं:

"१. पहले शिक्षण-संस्थायें केवल सरकारी नौकर तैयार करनेके कारखानों जैसी थीं। अिसलिअे अुनमें राष्ट्रीयता और पूर्ण व्यक्तित्वके विकासके अवसरका जो अभाव रहता था, अुसकी पूर्ति गांवों और शहरोंके विद्यार्थी-मंडल करते थे।

"आज परिस्थिति बदल गअी है। पहले जो प्रवृत्तियां विद्यार्थी-मंडल करते थे, अुन्हें शालाओं, कॉलेजों और सरकारने स्वीकार कर लिया है। अैसी स्थितिमें अब हमारे जैसे स्वतंत्र विद्यार्थी-मंडल क्या करें? वे कौनसी प्रवृत्ति चलायें?

"२. दूसरे, आज विद्यार्थियोंमें 'अिनीशिअेटिव' (पहल करनेकी वृत्ति) का विकास हो, अिस तरह कोअी काम होता नहीं दीखता। हर जगह अूपरसे आदेश आते हैं, जो आम तौर पर विद्यार्थियोंको पसन्द नहीं आते। क्या अैसा कुछ नहीं हो सकता, जिससे १९४२ के अरसेमें विद्यार्थी स्वयंस्फूर्तिसे जैसे प्रवृत्तियां चलाते थे, वैसे आज भी चला सकें? विद्यार्थियोंके जोश और अुत्साहका किस तरह अुपयोग किया जाय कि अुनमें 'अिनीशिअेटिव' का गुण बढ़े?

"३. शालाओंमें बाहरी परिवर्तन हुअे हैं। लेकिन अभी तक शिक्षण-संस्थायें चलानेवाले बहुतसे लोग पुराने विचारोंकी पकड़से छूट नहीं सके हैं, जब कि विद्यार्थी समाजमें जो परिवर्तन अनुभव कर रहे हैं, अुसके परिणामस्वरूप वे स्वभावतः कुछ नया करनेकी अभिलाषा रखते हैं। पुराने विचारोंके शिक्षक और शिक्षाशास्त्री अुनकी आकांक्षायें पूरी नहीं कर सकते। अिसके कारण विद्यार्थियोंमें अेक ओर व्यग्रता और क्रोधकी भावना तथा दूसरी ओर निराशा और मिथ्याभिमानकी भावना दृढ़ होती पाअी जाती है, जो सचमुच बड़े महत्त्वका प्रश्न है।

"४. यही कारण है कि छोटी छोटी बातोंसे अुत्तेजित होकर वे हड़तालों या दंगोंका आसरा लेते हैं। अतः प्रश्न यह है कि अुनकी कठिनाअियों, असुविधाओं, अन्यायों और शिकायतोंके निवारणके लिअे अुन्हें कोअी शान्तिपूर्ण पद्धति नहीं बताअी जा सकती? क्या अिसकी कोअी 'टेकनीक' नहीं हो सकती? क्या शिक्षा-विभाग अिस संबंधमें कुछ नहीं कर सकता?"

मैं अपना भाषण लिखकर नहीं ले जा सका था। अुस अवसर पर मैंने जो बातें कही थीं, अुनमें अिन प्रश्नोंका भी जिक्र किया था। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि अिनके अुत्तरोंकी गहराअीसे मैंने चर्चा की थी, फिर भी अुन्हें छूते हुअे कुछ बातें कही थीं। अुनमें से कुछ मुद्दों पर आगे स्वतंत्र रूपसे चर्चा करनेका मेरा विचार है। अिस समय तो अूपरके प्रश्न पाठकोंकी चर्चाके लिअे यहां पेश करता हूं। जाहिर है कि ये प्रश्न विद्यार्थी-प्रवृत्तिके मूलको छूते हैं।

२५-९-'५५ म० प्र०

राजनीतिके रंग

अगस्त माहमें पटनामें जो दंगे और गोलीबार हुअे, अुससे देशमें काफी हो-हल्ला मचा और चर्चा चली। बिहार सरकार ही नहीं, परंतु जवाहरलालजी और जयप्रकाश नारायणजी भी अुसमें आते हैं। कहा जाता है कि विद्यार्थियोंने राष्ट्रध्वजका किसी तरह अपमान किया। शायद बम्बअीमें भी अैसा हुआ था। लेकिन बात यह है कि न तो पटनामें और न बम्बअीमें दरअसल अैसी ओछी देश-भक्तिवाला कोअी होगा, जो अपने राष्ट्रध्वजका अपमान करनेकी बात कभी सोचेगा। सब कोअी जानते हैं कि गुस्सेमें जब आदमी आ जाता है, तब न करने जैसी बात भी कर बैठता है। अुसमें भी हुल्लड़बाजीमें बह जाने पर तो यह चीज और भी जल्दी और जोरदार ढंगसे हो जाती है, अैसा मानस-शास्त्री कहते हैं।

विचार करने पर अेक बात यह खयालमें आयेगी कि दोनों जगह लोगोंकी भीड़ सरकारसे चिढ़ गअी थी। अिससे लोग राष्ट्रध्वजको सरकारका ध्वज मान बैठे। और फिर सरकार पर की चिढ़ राष्ट्र-ध्वज पर अुतर गअी, अैसा लगता है।

परंतु जवाहरलालजी पटनाकी घटनासे अितने ज्यादा चिढ़ गये कि अुन्होंने कहा, राष्ट्रध्वजकी शान रखनेके लिअे मौका आने पर लोगोंकी हत्या भी करना पड़ सकता है! अिस पर तरह तरह की टीकायें हुअी हैं। कुछ वर्ष पहले कालाबाजार करनेवालोंको फांसी पर चढ़ा देनेकी बात भी अुन्होंने नहीं कही थी? अब साहित्यिक यदि अैसा सोचें तो ठीक हो कि भावोद्रेक अेक अर्थालंकार है। या अुसकी गिनती अतिशयोक्ति या अत्युक्तिमें की जायगी?

अेक अखबारने लिखा कि राष्ट्रध्वजकी शान बड़ी या अिन्सान बड़ा? और अिसकी दलीलमें अेक जगह रंगमें आकर स्व० किशोर-लालभाअीने राष्ट्रध्वजका जो वेदान्ती पंचीकरण किया है, वह याद आया। अुसमें बहुत करके अुन्होंने यह कहा है कि राष्ट्रध्वज अन्तमें तो वस्त्रका अेक टुकड़ा ही है न! बात सच है; परंतु टुकड़े टुकड़ेमें फर्क तो होता है। और यह फर्क अुसके प्रति रहे हमारे प्रेम और भावनाओंसे ही पैदा होता है। दुनियामें जो भी भिन्नता देखनेमें आती है वह अिसी वजहसे पैदा होती है न? आकार अलग अलग हैं, परन्तु 'अन्तमें तो सब सोना ही है'।

और यदि अिस दृष्टिसे देखें तो मनुष्यकी जांच करने पर आखिर क्या रहेगा? 'गन्दी देहका घड़ा' ही न, जिसका नियम है 'जो पैदा हुआ है वह मरेगा ही'। और फिर तो श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको दिये गये अुपदेशका भी हवाला दिया जा सकता है।

मुझे लगता है कि अिस तरह बात करनेके ढंगमें ही कुछ दोष माना जाना चाहिये। परंतु राजनीतिक रंगमें बातोंकी चर्चा अपने आप ही यह ढंग अख्तियार कर लेती होगी।

पटनाके अिस कांडकी जांच अब अेक न्यायाधीश कर रहे हैं, अिसलिअे यहां अुसकी चर्चामें पड़ना जरूरी नहीं है।

२५-९-'५५ म० प्र०

www.vinoba.in

ध्वज राष्ट्रका या सरकारका?

राष्ट्रध्वज सारे राष्ट्रका है, न कि अुसकी किसी तत्कालीन सरकारका या अुसकी पार्टीका। यह दीयेके प्रकाश जैसी वस्तु जब भुला दी जाती है, तब कैसी कमनसीब बातें हो जाती हैं, अिसकी अेक मिसाल हालमें दक्षिण भारतमें देखनेको मिली। पाठकोंको यह किस्सा याद होगा।

द्राविड़ संगठनके नेताने हिन्दीके विरोधमें राष्ट्रध्वजको सार्वजनिक स्थान पर जलानेका निर्णय किया था। परंतु अन्तमें मद्रासके मुख्यमंत्रीके कहनेसे अुन्होंने यह विचार छोड़ दिया। क्योंकि, अेक मद्रासी मित्रने आंख मटकाकर मुझे कहा कि श्री कामराज नादर भी तो अब्राह्मण ही हैं न?

यहां मुझे अेक अंग्रेजी कविता याद आती है। अमेरिकामें गृह-युद्ध हुआ तब दक्षिण पक्षका सेनापति कूच करता हुआ अेक गांवमें दाखिल हुआ। गांवके अेक घरके झरोखेमें अमेरिकाका राष्ट्रध्वज लहरा रहा था। दक्षिण पक्षके सेनापतिने हुक्म दिया कि अुसे गोली मारकर गिरा दो। अितनेमें ही अेक वृद्धा स्त्री आकर ध्वजको अुठा लेती है और कहती है, 'यह ध्वज हमारे राष्ट्रका है — आपका भी है। अुसका अपमान करनेसे पहले आप मेरे प्राण ले लीजिये।' कवि कहता है कि वृद्धाकी यह बात सुनकर सेनापतिको भान आया; अुसने अपना हुक्म रद्द कर दिया और सेना ध्वजको लहराता हुआ रहने देकर आगे बढ़ गअी!

अिस किस्सेमें भी अुस सेनापतिने वही भूल की। अुसने राष्ट्रके ध्वजको अुत्तर पक्षका ध्वज माना — सरकारका ध्वज मान लिया! परंतु अेक वृद्धा स्त्रीने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर अुसकी शान रखी।

अिस चीजको कविने अमर कर दिया है। मुझे विचार आता है कि हमारे यहां दक्षिण भारतके या पटनाके किस्से परसे कोअी कविता क्यों न फूटी?

अिसका कारण यह तो न हो कि आज भारतमें कवि-हृदय भी राजनीतिक रंगसे बाहर निकलकर अपने कल्पना-व्योममें विहार नहीं कर सकते? पता नहीं आजादी आनेके बादसे काव्यके पंख अिस तरह भारी हो गये हैं या क्या बात है, हमें अिस महान् परिवर्तनके संबंधमें कविगान बहुत कम — नहींवत् सुननेको मिला!

२५-९-'५५ म० प्र०

बम्बअीमें माध्यमकी लड़ाअी

सौराष्ट्रके अेक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री काफी व्यंगपूर्ण भाषामें लिखते हैं:

"बम्बअी विश्वविद्यालयने अुच्च शिक्षणकी संस्थाओंमें माध्यम क्या हो, अिसका विचार करनेके लिअे २३ सदस्योंकी अेक समिति नियुक्त की है। अब अखबारोंमें समाचार आये हैं कि अिन विद्वान सदस्योंने अपना निर्णय कर लिया है। अिस समितिने १९६५ में माध्यम बदलनेकी विश्वविद्यालयमें सिफारिश की है।

"यह निर्णय तो बहुत जल्दीमें किया गया है! अुच्च शिक्षणमें अितनी तेजीसे परिवर्तन क्यों होना चाहिये? माध्यम-परिवर्तन पहला परिवर्तन है, और अुसमें जितनी देर लगे अुतना ही अच्छा है। जल्दीमें कहीं कोअी नुकसान न हो बैठे। माध्यम-परिवर्तनसे अध्यापकोंको भारतकी अेकाध नअी भाषा सीखनी पड़े या मातृभाषामें बोलनेकी आदत डालनी पड़े, यह कितना कठिन काम? है यह प्रश्न तो जितना टाला जाय अुतना ही ठीक है।

"अिसलिअे बम्बअी विश्वविद्यालयको माध्यम बदलनेका विचार १९६५ में नहीं, बल्कि २०६५ में करना चाहिये। सौ वर्षमें बहुतसे प्रश्न अपने-आप हल हो जायंग। और कौन जानता है माध्यमका प्रश्न भी अपने-आप हल हो जाय। तब तो विश्वविद्यालयको कोअी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। समय जाय, विलम्ब हो, यही ठीक नीति है। परिवर्तन तो करने ही हैं। परंतु जल्दी मचानेसे आखिर क्या होनेवाला है?

"देश स्वतंत्र हो गया है और नये बल जोर पकड़ते जा रहे हैं, यह चीज पुराणपंथी संस्थाओंके लिअे बड़ी कठिनाअी पैदा कर रही है। ताजी हवा अन्दर घुसनेके लिअे हमला कर रही है और अन्दरके लोगोंकी सारी शक्ति मानो हवाको भीतर न आने देनेके लिअे खिड़की-दरवाजे बन्द रखनेमें ही खर्च हो रही है।"

यह सच है कि बम्बअी विश्वविद्यालय माध्यमके प्रश्नके संबंधमें बहुत देरसे जागा है, परंतु यह अुसके बुढ़ापेका दोष नहीं माना जा सकता। क्योंकि नया और अद्यतन माना जानेवाला बड़ोदा विश्वविद्यालय भी अिस संबंधमें अभी कहां विचार करने लगा है? फिर भी बम्बअीने अेक बातका निर्णय तो कर लिया है कि अंग्रेजी माध्यम नहीं रहेगा। कुछ लोग अभी भी अुसे रखनेके पक्षमें हैं, लेकिन विकल्पके तौर पर। बम्बअी, मद्रास और कलकत्ता जैसे हमारे सबसे पुराने विश्वविद्यालयोंमें अंग्रेजी समान रूपसे गले पड़ी लगती है! तीनों जगह अुसे कायम रखनेके मिथ्या प्रयत्न किये जा रहे हैं।

अब जब अंग्रेजीका जारी रहना संभव नहीं है, तो मद्रासने कहा कि अंग्रेजीकी जगह कभी न कभी तामिल आयेगी; मैं मानता हूं कि कलकत्ता बंगालीकी ही बात कहेगा, परंतु बम्बअी तो अनोखी और अलबेली नगरी ठहरी। वहां आन्तरभाषा हिन्दीको माध्यम बनानेकी बात चल रही है। तो क्या मद्रास और कलकत्तेमें पचरंगी आबादी नहीं होगी? और बम्बअीमें अैसी कौनसी पचरंगी आबादी है? कॉलेजमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके प्राप्त आंकड़ों परसे पता चलता है कि वहां कुल पचीस हजारमेंसे ९-१० हजार महाराष्ट्री, ८-९ हजार गुजराती और बाकी अन्य भाषा-भाषी विद्यार्थी हैं। अिससे तो स्पष्ट हो जाता है कि वहां मराठी और गुजरातीको माध्यमका स्थान मिलना ही चाहिये। अिससे अिनकार करना भारतीय संविधानका द्रोह करना है।

अब बम्बअीमें माध्यमका युद्ध शुरू हुआ है। आशा रखें कि अन्तमें वह अिस सीधीसादी बात पर आकर शान्त होगा। माध्यम परिवर्तन हमारे शिक्षण-सुधारकी पहली सीढ़ी है। हमें समझ लेना चाहिये कि जब तक यह प्रश्न सही ढंगसे हल नहीं होगा, तब तक शिक्षणका सारा काम सच्चे रास्ते पर नहीं चलेगा।

२३-९-'५५ म० प्र०
(गुजरातीसे)

बापूकी झाँकियाँ

[संशोधित आवृत्ति]

लेखक: **काका कालेलकर**

कीमत १-०-० डाकखर्च ०-५-०

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद-१४

विषय-सूची

		पृष्ठ
भारतका समाजशास्त्र	विनोबा	३०५
समान भाषा और प्रजाभावना	मगनभाई देसाई	३०६
चर्म-अुद्योगका विकास	वि०	३०७
राजभाषा कमीशन	मगनभाई देसाई	३०८
लोकशाही और निष्णातशाही	मगनभाई देसाई	३०९
विविध विचार	म० प्र०	३१०
टिप्पणी :		
जीवन और संहारका स्तर	म० प्र०	३०९

www.vinoba.in